दिव्यांग विमर्श की अवधारणा एवं स्वरूप

वन्दना पाण्डेय,
शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,
अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सारांश

साहित्य सदा से ही समाज को एक समग्र दृष्टि प्रदान करता है। वर्तमान समय में विविध विमर्शों के माध्यम से हाशियें के लोगों को केन्द्र की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा (लगभग पन्द्रह प्रतिशत आबादी) आज किसी न किसी तरह की दिव्यांगता का दंश झेल रही है। दिव्यांगों के लिए सरकार ने अनेक कानून बनाएं हैं, अनेक सुविधायें प्रदान की है, लेकिन समाज के रवैये और धारणाओं में परिवर्तन न होने के कारण दिव्यांगों को अनेक समस्याओं का समाना करना पड़ता है। ऐसे में साहित्य में दिव्यांग विमर्श की आवश्यकता है। दिव्यांगजन समाज की अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था की मुख्य धारा से दूर हैं। दैनिक जीवन में कई पहलुओं पर वह गैर विकलांग लोगों की तुलना में अधिक नुकसान झेलते हैं। ऐसे में दिव्यांग विमर्श साहित्य के माध्यम से समाज की धारणीय विकास की एक पहल है। दिव्यांग विमर्श के द्वारा समाज में सकारात्मक योगदान देने वाले दिव्यांगों के जीवन के प्रेरक प्रसंगों द्वारा अन्य दिव्यांगों की अन्तर्निहित प्रतिभा को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

KeyWords: *दिव्यांग, दिव्यांगता, विमर्श, समाज, अवधारणा, आवश्यकता।*

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो पूरी तरह निर्दोष हो या पूरी तरह गुणरहित। संसा के सभी प्राणियों में कुछ गुण है तो कुछ दोष भी। कहा भी गया है – ''दृष्टि किमपि लोकेऽस्मिन् न निर्दोष न निर्गुणम्।'' अर्थात् संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है जो निर्दोष हो गया निर्गुण। दिव्यांगता की समस्या उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता। मनुष्य अपने प्रारम्भिका काल में (आदिमानव) जब बनों में रहता था तब पेट भरने के लिए भोजन प्राप्त करने के उपक्रम में कई बार दुर्घटनाओं का शिकार होता था, कभी किसी हिंसक प्शु के आक्रमण में अपने शरीर का कोई अंग गवां बैठता था। इसके साथ ही प्राकृतिक आपदाओं जैसे जंगल की आग आदि में दुर्घटनाग्रस्त होकर दिव्यांग हो जाता था। आदिमानव और पशुओं में काफी समानता थी। अतः उस समय की दिव्यांगता किसी प्शु में होने वाली दिव्यांगता के समान थी। मानव अंगविहीन होने पर घिसट–घिसटकर जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाता था।

धीरे–धीरे सभ्यता का विकास हुआ और मनुष्य समूहों में रहने लगा। मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ी एवं आपस में धन–बल की वर्चस्व की लड़ाई प्रारम्भ हुई। युद्धों की नई–नई कलाओं के विकास के साथ एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली बनने की होड़ लग गई। युद्धों में जहाँ एक तरफ भारी जान–माल का नुकसान

होता था वहीं दूसरी तरफ भारी संख्या में लोग दिव्यांग भी हो जाते थे। हमारा इतिहास अनेक राजाओं के पराक्रम एवं गौरवगाथाओं से भरा पड़ा है, लेकिन इस पराक्रम ने कितने आम जनमानस को दिव्यांग बना दिया इसका कहीं कोई रिकार्ड नहीं है। बढ़ते युद्धों एवं अन्य कारणों से दिव्यांगों की संख्या में वृद्धि तो होती थी लेकिन सीमित साधनों के कारण मनुष्य के दिल में इनके लिए जगह भी कम ही थी। इनका भरण पोषण का उपाय करने की बजाय इन्हें दिव्यांगता से मुक्ति दिलाने की बात सोची जाती थी। यह भी वर्णन मिलता है कि प्राचीनकाल में यूनान एवं स्पार्टा जैसे देशों में नेत्रहीनों, अस्थिविकलांगों एवं मानसिक मंद दिव्यांगों को पानी में डुबाकर मार डाला जाता था। स्पेन में कई अंधे कुंए बनवाए गये थे, जहां दिव्यांगों को जबरन डुबा दिया जाता था।

समाज में दिव्यांगता को अलग–अलग नजरिये से देखा जाता था। कुछ लोग इसे पूर्वजन्मों के पापों का फल मानते थे। यहां तक कि स्वयं दिव्यांग भी इसे पूर्वजन्मों का फल मानकर स्वयं भी भोगता रहता था किन्तु अपने कष्ट को कम करने का प्रयत्न नहीं करता था। ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे, जिसमें दिव्यांग व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति न समझकर उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। महाभारत की कथा के अनुसार धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्य के उत्तराधिकारी थे किन्तु नेत्रहीन होने की वजह से उन्हें उनके अधिकार से वंचित करके पाण्डू को राजा बना दिया गया। अक्सर देखा गया है कि मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों को परिवार की सम्पत्ति से बेदखल कर दिया जाता है।

धीरे–धीरे मनुष्य की मानसिकता में बदलाव हुआ। दिन–प्रतिदिन बढ़ती हुई दिव्यांगों की संख्या ने मनुष्य को दिव्यांगों के हित में विषय में सोचने के लिए प्रेरित किया। समाज में दिव्यांगों की सहायता के लिए अनेक आश्रम एवं अस्पताल बनने लगे। विदेशों में, जहां दिव्यांगों को बोझ समझा जाता था, उनमें शिक्षा एवं जागरूकता का प्रसार करने का प्रयास किया जाने लगा। मूक बधिरों एवं नेत्रहीनों के लिए विशेष विद्यालय की स्थापना कर उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाने लगा।

जन्मजात, प्राकृतिक अथवा अन्य कारणों से शरीर के किसी अंग की अक्षमता वस्तुतः विकलांगता है। यह एक अनपेक्षिक अनामंत्रित घटना है, जिसके लिए किसी एक कारण को दोषी ठहराना सरासर नाइंसाफी होगी। उम्र, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, वर्ग, धर्म, लिंग की सीमाओं से परे कोई भी इसका शिकार हो सकता है। दिव्यांगता, चाहे शारीरिक हो या मानसिक, आंशिक हो या पूर्ण, एक आवांछित स्थिति है जिसे न चाहते हुये भी व्यक्ति को स्वीकार करना पड़ता है।

दिव्यांगों के लिए दिव्यांग शब्द का प्रयोग अभी नया है। इसके पूर्व दिव्यांगों के लिए विकलांग शब्द प्रचलन में था। दिव्यांग शब्द प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा दिव्यांगों के सम्मान और उनकी विलक्षण प्रतिभा को देखते हुये स्वीकार किया गया है। माननीय प्रधानमंत्री के अनुसार दिव्यांग व्यक्ति शरीर से अक्षम होते हुये भी ऐसे विलक्षण काम कर जाते हैं कि उनकी योग्यता और प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। ऐसे में शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के लिए विकलांग के स्थान पर दिव्यांग शब्द प्रयोग किया जाना चाहिए। किन्तु आदर्श और यर्था में हमेशा से विभेद रहा है। समाज में विकलांगों के लिए पंगु, अपंग, निशक्त, अंगबाधित, न्यूनांग, Crippled, Disabled, Handicapped आदि शब्द प्रचलित है। अगर सत्य की पराकाष्ठा कहें तो इन शब्दों की बात ही छोड़िए, नेत्रहीन को लोग अंधा, आन्हर, सूर, काना, अस्थिबाधित को लूला, लंगड़ा, लंगड़,

श्रवणबाधित को बहरा, बधिर, बहुविकलांग को अष्टावक्र आदि संज्ञायें देने से नहीं चूकते।

दिव्यांगजन समाज में हाशिए पर आते हैं। सदियों से ये लोग उपेक्षित जीवन जीते हैं। संध्या लिमये के अनुसार, ''हाशिए पर होने का मूल अर्थ हैं – व्यक्तिगत, अंतवैयक्तिक सामाजिक स्तरों पर पूर्ण सामाजिक जीवन तथा अन्य आवश्यकताओं से वंचित रखा जाना। जाहिर है – सामाजिक संरचना में किसी व्यक्ति या समाज के हाशिये पर होने के कई आधार हैं। विकलांगता के कारण एकाधिक नुकसान को झेलने वाले इन समूहों की समस्याओं को लैंगिक अंतर की कसौटी पर जाति, धर्म, नस्ल, स्थान, क्षेत्र आदि अन्य कारकों के सापेक्ष समझा जा सकता है। विकलांगता और लैंगिक वर्ग दोनों ही पूर्व निर्धारित होते हैं, लेकिन इनके आधार पर खास वर्ग की उपेक्षा की जाती है। पुरुषों के मध्य विकलांग उसे समझा जाता है जो सामान्य व्यक्ति की परिभाषा के अनुरूप शक्ति, शारीरिक क्षमता और स्वायन्तता को पूरा करने में विफल रहा है। इसी तरह ऐसी धारणा बनी हुई है कि एक विकलांग महिला गृहिणी, पत्नी, मां की भूमिका को पूरा करने में असमर्थ है और शारीरिक उपस्थिति के संदर्भ में सौन्दर्य और नारीत्व के स्थापित मान्यताओं के अनुरूप नहीं है। ये ही सबसे अधिक हाशिए पर हैं और शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से सबसे अधिक प्रताड़ित हैं और सदियों के लिए उपेक्षा, मौखिक–शारीरिक उत्पीड़न और यौन उत्पीड़न का शिकार बने हुये हो।''

समाज में विकलांगों (दिव्यांगों) को अनेक प्रकार की व्यवहारिक, सामाजिक और शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सकलांग समाज दिव्यांगों को बड़ी मुश्किल से पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर स्वीकार करता है। इसके कारण सामाजिक समावेशन प्रभावित होता है। हमारे समाज में विकलांगता को दिव्यांगता के रूप में नहीं, वरन् एक कलंक के रूप में देखा जाता है। दिव्यांगों के प्रति समाज का नकारात्मक रूख दिव्यांगों का जीवन कठिन कर देता है।

बींसवी सदी के उत्तरार्ध में वैश्विक फलक पर विविध विमर्शों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, जनजातीय विमर्श, बालश्रम, पसमान्दा, किन्नर विमर्श आदि पर लगातार चर्चा हो रही है। इसी प्रकार दिव्यांगता भी साहित्य में एक नये विमर्श का रूप ले रही है। इस विमर्श को केन्द्र में लाने में डॉ0 द्वारिका प्रसाद अग्रवाल और डॉ0 विनय कुमार पाठक का विशेष योगदान है।

आज के समय में विकलांगों (दिव्यांग) पर विमर्श होना अत्यन्त आवश्यक है। विकलांग विमर्श की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि, 'विकलांग जन समाज और अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा से बाहर होकर हाशिये पर हैं। वे दैनिक जीवन में कई पहलुओं पर गैर विकलांग लोगों की तुलना में अधिक नुकसान का अनुभव करते हैं। कई विकलांग लोगों द्वारा प्रतिकूल परिणाम झेलने की वजह से उनके स्वयं एवं उनके परिवार के जीवन के गुणवत्ता में कमी आती है। उनमें से कई स्वयं को अलग–अलग एवं अवांछित महसूस करते हैं। जबकि समाज उन्हें अपने ऊपर बोझ महसूस करता है। विकलांगों के माता–पिता, बच्चों और माई–बहन को भी इस नकारात्मक दृष्टिकोण, गरीबी और सामाजिक बहिष्कार का दंश झेलना पड़ता है।''

दिव्यांगों की समस्या का हल उन पर दया, सहानुभूति और मदद से नहीं बल्कि उन्हें बराबरी, सहयोग और उन्हें उनका हक दिलाकर होगी। वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन के अनुसार दुनियां में अलग साठ लाख लोग दिव्यांगता से प्रभावित है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल दिव्यांगों की संख्या लगभग 268 लाख है। इनमें महिला दिव्यांगों की संख्या 118.2 लाख तथा पुरुष 149.9 लाख है। विकलांगों के लिए अगर रोजगार के विषय में बात करें तो उन्हें

पीडब्लूडी कहा जाता है। पीडब्ल्यूडी का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है, जिसकी विकलांगता 40 प्रतिशत से कम न हो। भारत सरकार ने विकलांगों के सामाजिक एवं आर्थिक समावेशन के लिए तीन कानून बनाये हैं

1. भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, 1992
2. विकलांग व्यक्ति 'पीडब्ल्यूडीएस' कल्याण अधिनियम 1995
3. ऑटिज्म, सेरेब्रल पालसी, मानसिक मंदता और बहु विकलांगता बाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1995।

इसके अतिरिक्त 2008 में भारत ने विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र संधि, 2006 पर भी हस्ताक्षर किया है। इसके अनुसार समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ दिव्यांग व्यक्तियों को भी पूर्ण भागीदारी और अवसर देने पर जोर दिया गया है। इसके साथ ही भारत सरकार ने वर्ष 2016 के अंत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम ने 1995 के दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम का स्थान लिया है। इस अधिनियम में दिव्यांगता के प्रकार को सात से बढ़ाकर 21 कर दिया है।

वास्तव में पीडब्ल्यूडी को समाज में सर्वाधिक गरीब होने के कारण सबसे वंचित वर्ग कहना उपयुक्त होगा। यह भी एक तथ्य है कि विकलांगता निर्धनता के साथ अन्तर्सम्बन्धित होती है और समाज के गरीब वर्गों में विकलांगता होने की अधिक सम्भावना होती है। यह स्थिति तब और खराब होती है जब महिलाएं विकलांग होती है। हमारे समाज में स्वावलम्बन, अस्मिता ओर स्वसुरक्षा नारियों की प्राथमिक आवश्यकता बन गई है। नारी विमर्श और आन्दोलन भले ही यह विश्वास दिलाएं कि वर्तमान समय में नारी की दशा सुधरी है लेकिन जब बात निर्णय लेने की स्वतंत्रता और आत्मरक्षा का आता है तब स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का पता लग जाता है। सकलांग और सशक्त नारियों के लिए यह मुद्दा गम्भीर एवं विचारणीय है तो दिव्यांग महिलाओं की स्थिति का अनुमान भी सहज लग जाता है।

समाज और साहित्य आपस में अन्तर्सबन्धित है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। समाज की आवश्यकता को साहित्य भलीभांति समझता है तथा समाज साहित्य लेख्न के लिए कच्चा माल प्रदान करता है। साहित्य और समाज की प्रबुद्ध प्रगतिशील दुनिया में स्त्री एवं दलित विमर्श केन्द्र में है, सदियों से वंचित, उपेक्षित यह वर्ग समाज का अटूट हिस्सा रहा है, फिर भी इसकी अनदेखी होती रही है। जब से जागरूकता बढ़ी है, समाजवादी चिन्तन की ओर जनमानस का रूझान बढ़ा है, तबसे वंचित उपेक्षित वर्ग को साथ लेकर आगे बढ़ने की ललक स्पष्ट देखी जा सकती है। हमारी सरकारों ने भी स्त्री और दलित वर्गों के लिए आरक्षण जैसी अनेक कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से इनके सम्मानजनक जीवन के ठोस उपाय भी किए हैं। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि समाज के महत्वपूर्ण घटकों, उपक्रमों या संस्थानों में दोनों वर्गों की सम्मान जनक उपस्थिति दर्ज होने लगी है, लेकिन समाज का एह विशाल वर्ग अब भी मौजूद है, जिसकी उपेक्षा के आरोप से हम बरी नहीं हो सकते। यह वर्ग है निःशक्तों का यानि विकलांग बंधु भगिनियों का।''

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि दिव्यांग विमर्श साहित्य की आवश्यकता है। सरकार सुविधायें प्रदान कर रही है, नियम कानून बना रही है, किन्तु समाज का धारणीय विकास साहित्य ही कर सकता है। हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा दिव्यांगता का दंश झेल रहा है। इस विशेष वर्ग को हाशिये पर छोड़कर समाज का सर्वांगीण विकास असम्भव सा है। अतः अब समय आ गया है कि सदियों से वंचित दिव्यांग समाज पर लेखनी चलाई जाय। दिव्यांगों के संघर्ष,

उनकी समस्यायें, उनके जीवन के साहसिक एवं प्रेरक प्रसंग पाठक एवं समाज के सामने प्रस्तुत किया जाय। इससे समाज का विकालंगों के प्रति जो नकारात्मक रवैया है, उसमें बदलाव होगा। इसके साथ ही दिव्यांग विमर्श के जरिये इन उपेक्षित व्यक्तियों की अन्तर्निहित प्रतिभा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इससे दिव्यांगों को आत्मसम्मान और स्वावलम्बन की भावना का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परमानन्द डॉ0 संगीता, विकलांगता का समाजशास्त्रीय अध्ययन, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, संस्करण 2017, पृ0 56
2. लिमये संध्या ,विकलांग जनों का सामाजिक समावेश : मुद्दे ओर रणनीतियाँ, योजना (पत्रिका), मई 2016, पृ0 25–26
3. लिमये संध्या, विकलांग जनों का सामाजिक समावेश : मुद्दे एवं रणनीतियाँ, योजना (पत्रिका) मई, 2016, पृ0 25
4. दास पी0सी0, विकलांगों के लिए वित्तीय समावेशन, योजना (पत्रिका), मई 2016, पृ0 20
5. परमानन्द डॉ0 संगीता, विकलांगता का समाजशास्त्रीय अध्ययन, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, सं0 2017, पृ0 189
6. माहेश्वरी डॉ0 सुरेश(सं0), विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, भावना प्रकाशन, दिल्ली सं0 2014, पृ0 323
7. पाठक डॉ0 विनय कुमार (सं0) विकलांग विमर्श, अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद, बिलासपुर, सं0 प्रथम, पृ0 18–19
8. वर्मा डॉ0 विजय कुमार, दिव्यांगता : एक सामाजिक यथार्थ, आशा प्रकाशन, कानपुर, सं0 2017, पृ0 11–12